आते हैं 'महफ़िलों'[1] के लिए, हम 'मोमबत्तियाँ'[2]
तस्वीरें[3] कुछ तो बहरे[4] मुलाक़ात चाहिए





ग़ालिब चित्रावली





शादो,[1] दिलशादो,[2] शादमाँ,[3] रखियो
और ग़ालिब प' मेहरबाँ रखियो

भारतीय मनीषि, कला, दर्शन एवं [illegible] के अनन्य साधक

उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री

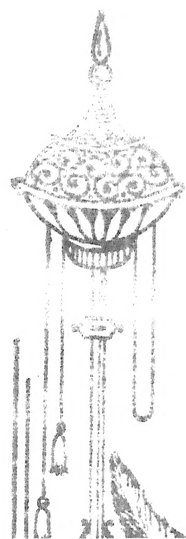
माननीय डा० सम्पूर्णानन्द

को

फ़ारसी और उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवि मिर्ज़ा ग़ालिब के अप्राप्य एवं

प्रामाणिक चित्रों का यह संग्रह सगर्व, सादर,

सप्रेम समर्पित है !



बहोरवा
२५ अगस्त १९६०

ख़ैर बहोरवी

किस से महरूमिये क़िस्मत की शिकायत कीजे
हमने चाहा था कि मर जायें, सो वह भी न हुआ

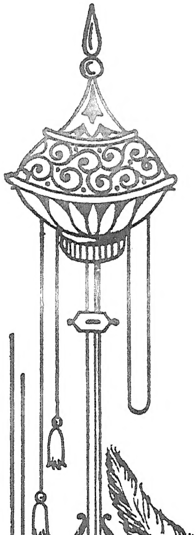


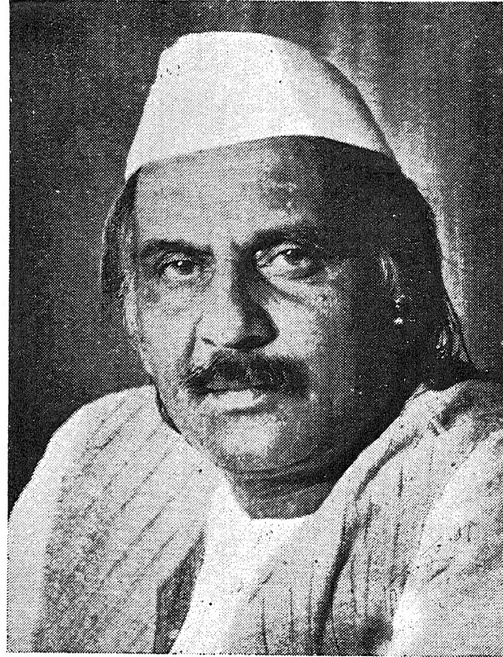
बस कि दुश्वार है, हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मयस्सर नहीं, इन्सां होना



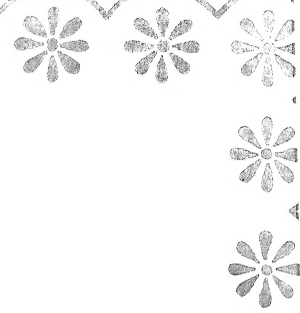
थी ख़बर गर्म, की ग़ालिब के उड़ेंगे पुर्ज़ें
देखने हम भी गए थे, प' तमाशा न हुआ

माननीय डा० सम्पूर्णानन्द



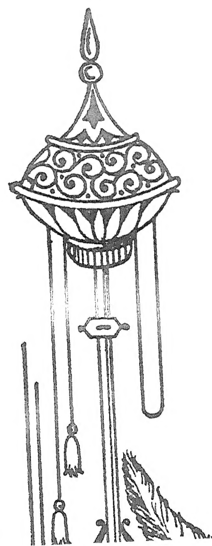


तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हों, दिन पचास हज़ार



चित्रावली





तुम करो 'साहब क़रानी'[1] जब तलक
है 'तिलिस्मे रोज़ो-शब'[2] का दर[3] खुला

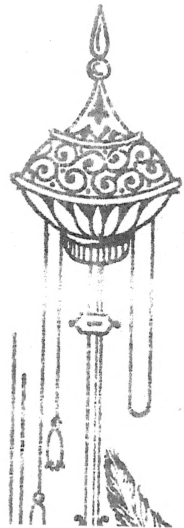
राष्ट्रपति भवन में सम्पादक से

'मोरक़्क़ए-ग़ालिब'

के निरीक्षण के सन्दर्भ में

कवि के जीवन और काव्य पर बातचीत करते हुए

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद



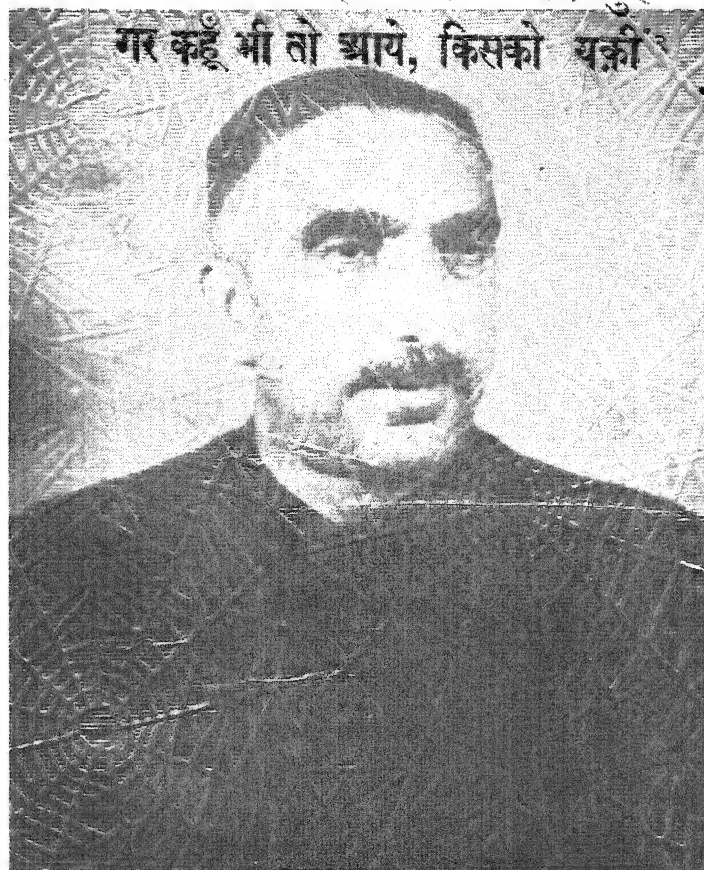
मुल्क के वारिस को देखा ख़ल्क़[1] ने
अब फ़रेबे[2] तोगरलो[3] संजर[4] खुला

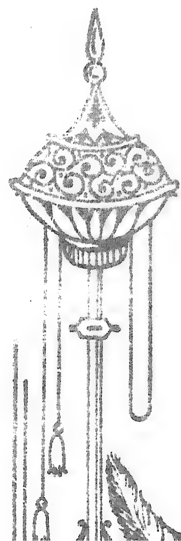
प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू
सम्पादक से चित्रावली में
संग्रहीत ग़ालिब के
अन्तिम समय के
चित्र पर बातचीत
करते हुए।

माननीय श्री बख़्शी गुलाम महम्मद

आप की मद्ह[1] और मेरा मुँह

गर कहूँ भी तो आये, किसको यक़ीं[2]





तुम रहो जिन्दा जावेदाँ[1] आमीन

विद्यानुरागी

माननीय श्री बख़्शी गुलाम मुहम्मद

प्रधान मंत्री जम्मू व कश्मीर

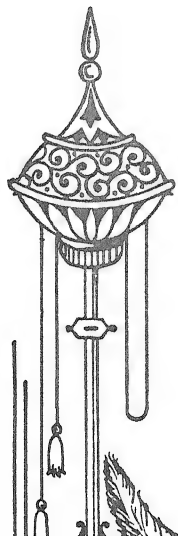
जिन्होंने

"ग़ालिब इन्साइक्लोपीडिया"

के एक अध्याय

का समर्पण स्वीकार किया है।

डा० हुमायूँ कबीर



अङ्ग्रेज़ी एवं बङ्गला भाषा-साहित्य
के मर्मज्ञ विद्वान

डा० हुमायूँ कबीर,

केन्द्रीय मंत्री

वैज्ञानिक शोध एवं सांस्कृतिक विभाग।

जिन्होंने "गालिब चित्रावली" के अंग्रेजी
संस्करण का सम्पर्ण स्वीकार किया है।



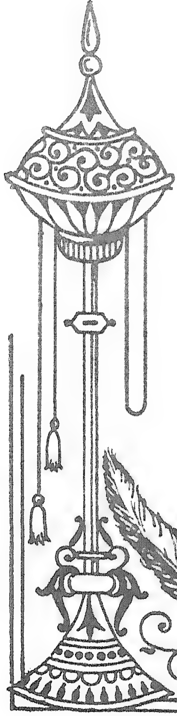


दो शब्द

आचार्य डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

मेरे मित्र श्री ख़ैर बहोरवी साहब ने "ग़ालिब चित्रावली" का सम्पादन बड़े परिश्रम और विवेक के साथ किया है। ग़ालिब केवल उर्दू के ही नहीं, भारतीय भाषाओं के कवियों में सर्वमान्य हैं। उनका साहित्य जितना ही उच्च कोटि का है उतना ही विशाल भी। उनकी कविताओं के प्रेमी तो अनगिनत हैं परन्तु उनके साहित्य का मंथन करने वाले और विवेक और परिश्रम के साथ उसका विवेचन और अनुशीलन करने वाले बहुत कम लोग हैं। उनकी जीवनी और जीवन-दर्शन दोनों का अवगाहन करके ख़ैर साहब ने उन्हें जन-ग्राह्य बनाया है। "ग़ालिब चित्रावली" उनके परिश्रम का केवल एक अंश मात्र है। उनका संकल्प और भी बड़ा है। वे धुन के पक्के और लगन वाले साहित्यकार हैं। परमात्मा उनके संकल्प को पूर्ण करे।

जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं उस समय ऐसा समाचार मिला है कि, ख़ैर साहब बहुत बीमार हैं। हर सहृदय साहित्य प्रेमी भगवान से प्रार्थना करेगा कि उन्हें शीघ्र स्वस्थ और कर्म-क्षम बनावें। परम पिता से मेरी भी आन्तरिक प्रार्थना है कि वे शीघ्र स्वस्थ होकर अपने महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करें।





सब के दिल में है जगह तेरी, जो तू राज़ी हुआ
मुझ प गोया एक ज़माना मेहबाँ हो जाएगा

★

है ख़बर गर्म उनके आने की
आज ही, घर में बोरिया न हुआ

★

जान दी, दी हुई उसी की थी
हक़ तो यूँ है, कि हक़ अदा न हुआ





ख़ैर बहोरवी साहब

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह जी "दिनकर"

मौलाना ख़ैर बहोरवी मेरे पुराने दोस्तों में से हैं। अभी दो-तीन रोज़ पहले वे मुझसे मिलने आये तो बोले, "दिनकर जी, अब सभाओं में मुझे हिंदी बोलने की ख़्वाहिश नहीं होती।" मैंने ज़रा अकचका कर पूछा, "यह क्यों?" बहोरवी साहब बोले, "ख़ौफ़ यह होता है कि कहीं लोग यह न समझ बैठें कि मैं हिंदुओं की ख़ुशामद करने लगा हूं।"

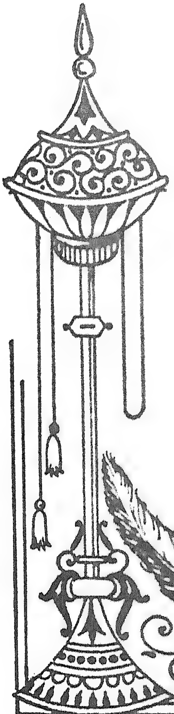
अपने प्यारे दोस्त की यह अदा मुझे बहुत पसंद आयी। मैंने मन ही मन कहा, "बहोरवी अभी ज़िन्दा है। उसकी ख़ुद्दारी और बहादुरी बरक़रार है। भगवान सबकी ख़ुद्दारी को यों ही बरक़रार रखें।"

बहोरवी साहब की अदा पसन्द मुझे इसलिए आयी कि हिन्दी के प्रेमी वे उस समय थे जब मुसलमानों में हिन्दी का जानकार ढूँढ़े भी नहीं मिलता था। एकता के लोभ और गांधी जी के असर में आकर भले लोग हिन्दी का समर्थन तो करते थे, मगर, हिन्दी सीखने की ज़हमत उठाने को उनमें से कोई भी तैयार नहीं था।

ऐसे समय मौलाना अबुलख़ैर बहोरवी श्री फ़रीदुलहक़ अन्सारी (जो अब राज्य सभा के पी० एस० पी० सदस्य हैं) के साथ सन् १९३६ ई० में अचानक मेरे घर आ पहुंचे और दस दिनों तक मेरे मेहमान बनकर उन्होंने मुझे कृतार्थ कर दिया।

उन दिनों मैं सीतामढ़ी (मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार) में सब-रजिष्ट्रार था और इन दोनों सज्जनों में से किसी से भी मेरी पहले की कोई जान-पहचान नहीं थी। मैं पटने जाने पर बराबर जयप्रकाश जी की संगति में उठता-बैठता था। उस क्रम में अन्सारी साहब से तो मेरी थोड़ी देखादेखी थी, लेकिन, बहोरवी साहब को तो मैं जानता भी नहीं था। लेकिन, दो-एक घंटे की बातचीत में ही बहोरवी साहब से मेरी पूरी दोस्ती बैठ गयी और दस दिन साथ रहकर तो मैं और वे बहुत-बहुत क़रीब आ गये। तब से लेकर आज तक मैं बराबर उनका प्रशंसक रहा हूं और बराबर उनके प्रति मेरा प्रेम बढ़ता गया है।

मौलाना ख़ैर बहोरवी साहब का असली नाम अबुलख़ैर है जिसका अर्थ "नेकी का बाप" होता है, नेकी के पिता वे हों या न हों, मगर, नेक तो वे हैं ही। बलिया ज़िले के बहोरवा गांव का बासी होने के कारण उन्होंने उपनाम अपना बहोरवी चुना है। उनकी उम्र अब कोई ५१-५२ के क़रीब यानी लगभग मेरी उम्र से मिलती-जुलती है। दाढ़ी उनकी सफ़ेद हो चली है, मगर, मिज़ाज अब भी हरा यानी उमंगों और मनसूबों से पूर्ण है। डिगरी तो उनके पास कोई नहीं है, लेकिन, फ़ारसी, उर्दू, हिंदी और अंग्रेज़ी वे जानते हैं। हृदय से वे धार्मिक हैं। विशेषता यह है कि सभी धर्मों पर उनकी श्रद्धा समान है। हिन्दू धर्म पर तो उनकी ऐसी श्रद्धा है कि कृष्णचरित के वे हृदय से प्रेमी हो उठे हैं। गीता



और कृष्ण-चरित पर जब वे बात करते अथवा भाषण देते हैं तब वह सुनने लायक़ होता है। भारत की सामासिक संस्कृति का उन पर पूरा असर है और हिन्दू-मुस्लिम एकता के वे एकमात्र सेवक रहे हैं।

उर्दू के कवियों में संख्या तो उन्हीं की बड़ी थी जो हिंदू-मुस्लिम एकता को सत्य बनाना चाहते थे, जो पूँजीवाद और सामाजिक विषमता के ख़िलाफ़ और जमहूरियत के बड़े प्रबल पक्षपाती थे। फिर भी, देश का विभाजन क्यों हो गया, यह सोच कर अचरज होता है। चकबस्त, ज़ोश, जमील और साग़र निज़ामी, ये एकता के बड़े ही तेजस्वी प्रहरी रहे हैं। ख़ैर, बहोरवी का शुभ नाम भी इसी सारणी में लिखा जायगा और मेरी आशा है कि, आज नहीं तो कल, वह सपना ज़रूर साकार होगा जिसकी सेवा इनकी कविताओं द्वारा होती आई है।

वैसे तो, सीतामढ़ी में बहोरवी साहब की "सुबहे-बनारस" नामक नज़्म मुझे बहुत पसंद आयी थी, लेकिन, एकता को लक्ष्य करके लिखी गयी उनकी नज़्में भी बेजोड़ हैं और आज भी उनकी उपादेयता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

बरहमन वेदों से पूछें, मौलवी क़ुरआन से,
फिर मुझे दोनों बतायें यह ज़रा ईमान से,
वह .ख़ुदा कैसा है, जो तनहा मुसलमानों का है,
और ख़ालिक़, सिर्फ़ काबे के निगहबानों का है।
ईश्वर कैसा है वह, कैसा है वह परमात्मा,
हिंदुओं पर सिर्फ़ जो करता है किरपा और दया?
वह .ख़ुदा है, ईश्वर है, या कोई इंसान है
जिसका मंदिर और मस्जिद में फ़क़त स्थान है?
वह .ख़ुदा, क़ुरआन का है, और न वह वेदों का है,
है अगर कोई .ख़ुदा ऐसा, तो मतभेदों का है।

(मेरा .ख़ुदा)

ख़ैर साहब कर्मठ व्यक्ति हैं और उनकी कविताएँ भी उनके कर्मठ सिद्धांतों से प्रेरित रही हैं। वे कलाकार कम, समाज-सुधारक अधिक रहे हैं और उनका यह रूप उनकी सभी रचनाओं में झलक मारता है।

अंजुमने तरक़्क़ी-उर्दू के, एक समय, वे उपमंत्री थे और इस पद पर रहकर उन्होंने अच्छा काम किया था। उर्दू भाषा के अनन्य प्रेमी और भक्त, डाक्टर मौलवी अब्दुलहक़ साहब के वे बड़े ही विश्वासभाजन थे और भाषा की सेवा का पाठ ख़ैर साहब ने उन्हीं के चरणों में बैठकर सीखा था।

कई वर्षों से उन्होंने कविता लिखना, प्रायः छोड़ दिया है और अब वे महाकवि ग़ालिब के संबंध में एक विश्वकोष तैयार करने में लग गये हैं। जिसका एक अध्याय 'ग़ालिब चित्रावली' के नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। मैं ख़ैर साहब के इस नूतन महायज्ञ की सफलता की कामना करता हूं।

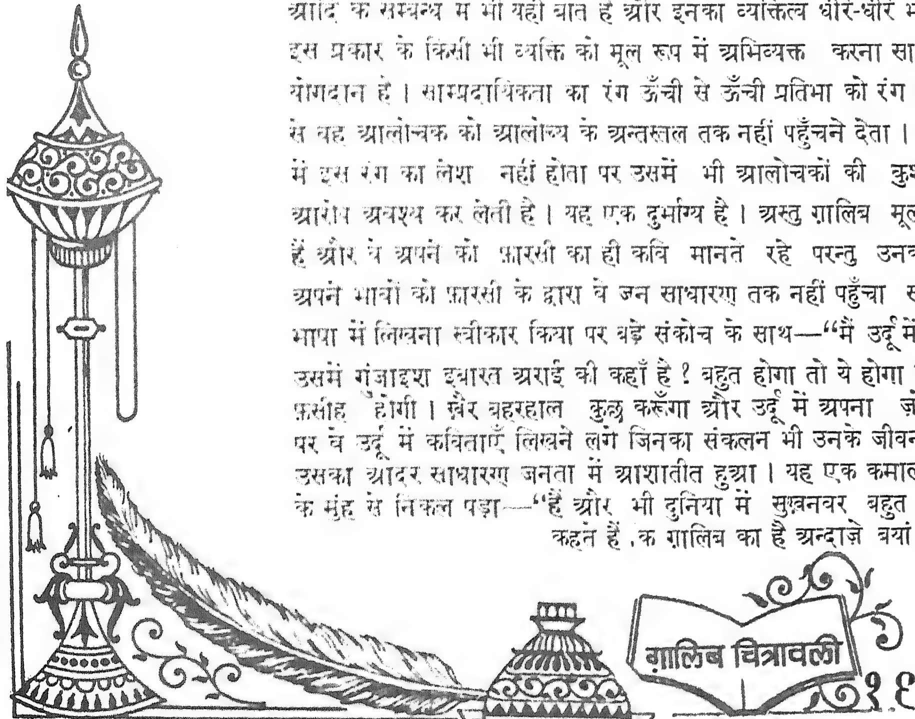


ग़ालिब चित्रावली

डा० हरवंशलाल शर्मा

प्रोफेसर मुसलिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता है कि श्री ख़ैर बहोरवी साहब "ग़ालिब चित्रावली" प्रकाशित कर रहे हैं। बहोरवी साहब की यह योजना बड़ी पुरानी है और इसे कार्यान्वित करने में ये लगभग १०-१५ वर्षों से प्रयत्नशील हैं परन्तु प्रमाणिक चित्रावली का प्रकाशित करना सहज काम नहीं है। पहले तो साधारण रूप से प्रामाणिक चित्रों का प्राप्त करना ही दुष्कर कार्य है दूसरे ग़ालिब जैसे यशस्वी कलाकार के चित्रों में समय के साथ कृत्रिमता का आरोप स्वभाविक है। ऐसे महान् व्यक्ति के चित्र, पत्र अथवा हस्तलेख से किसी न किसी प्रकार के निजी सम्बन्ध स्थापित करने की भावना इस कृत्रिमता को और भी प्रश्रय देती है। पिछले लगभग सौ वर्षों से जैसे-जैसे ग़ालिब का यशः सौरभ अधिकाधिक फैलता जा रहा है वैसे ही वैसे उनकी कविता, भाषा तथा व्यक्तित्व आदि पर अधिक आवरण चढ़ते जा रहे हैं। कबीर, सूर और तुलसी आदि के सम्बन्ध में भी यही बात है और इनका व्यक्तित्व धीरे-धीरे भाव-जगत् की वस्तु होती जा रही है। इस प्रकार के किसी भी व्यक्ति को मूल रूप में अभिव्यक्त करना साहित्य और समाज के क्षेत्र में एक बड़ा योगदान है। साम्प्रदायिकता का रंग ऊँची से ऊँची प्रतिभा को रंग कर धुंधला कर देता है और मात्रा-भेद से वह आलोचक को आलोच्य के अन्तस्तल तक नहीं पहुँचने देता। किसी भी ऊँचे कलाकार की अभिव्यक्ति में इस रंग का लेश नहीं होता पर उसमें भी आलोचकों की कुशाग्र बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि उस रंग का आरोप अवश्य कर लेती है। यह एक दुर्भाग्य है। अस्तु ग़ालिब मूलतः अमीर खुसरो की परम्परा के कवि हैं और वे अपने को फ़ारसी का ही कवि मानते रहे परन्तु उनका हृदय जन साधारण का हृदय था, अपने भावों को फ़ारसी के द्वारा वे जन साधारण तक नहीं पहुँचा सकते थे। मित्रों के आग्रह पर उन्होंने भाषा में लिखना स्वीकार किया पर बड़े संकोच के साथ—"मैं उर्दू में अपना कमाल क्या ज़ाहिर कर सकता हूँ उसमें गुंजाइश इबारत अराई की कहाँ है? बहुत होगा तो ये होगा कि मेरी उर्दू बनिस्बत औरों की उर्दू के फ़सीह होगी। ख़ैर बहरहाल कुछ करूँगा और उर्दू में अपना ज़ोरे क़लम दिखलाऊँगा।" समय-समय पर वे उर्दू में कविताएँ लिखने लगे जिनका संकलन भी उनके जीवन काल में प्रकाशित हो गया था और उसका आदर साधारण जनता में आशातीत हुआ। यह एक कमाल था जिससे अभिभूत होकर स्वयं कवि के मुंह से निकल पड़ा—"हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे,
कहते हैं कि ग़ालिब का है अन्दाज़े बयां और।"



ग़ालिब अपनी मृत्युसे कुछ पहले तक उर्दू के लिये हिन्दी का भी प्रयोग करते थे। उनके पत्रों का एक संकलन "ऊदे हिन्दी" नाम से उनके जीवन काल में छपा था जिसमें बहुत सी अशुद्धियाँ रह गई थीं। इसलिए दूसरा संकलन उनकी मृत्यु के पश्चात् "उर्दू-ए-मुअल्ला" के नाम से छपा। भाषा की बहस अलग है, ग़ालिब की कविता एक ऐसी भारतीय आत्मा की पुकार है जिसने सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम को अपनी आँखों से देखा और भुगता था। इसीलिये उनकी कविता में वह करुण-क्रन्दन, वह अनुभूतिमयी वेदना, वह निरावरण विह्वलता और वह अकृत्रिम भावावेश है जिसके कारण वह उत्तरोत्तर लोक-प्रिय होती जा रही है। ग़ालिब का व्यक्तित्व कितना निरपेक्ष होगा, कितना महान् और उदार यह उनकी कविता से स्पष्ट भासित होता है। कविता भी एक वर्णमय चित्र है, उसकी सूक्ष्म रेखाओं के पीछे कवि का व्यक्तित्व झाँकता है। रेखामय चित्र में वह झाँकी कुछ स्थूल रूप में अभिव्यक्त होती है। चतुर चितेरे की तूलिका अन्तस्तल के गहनभावों को सरल और वक्र रेखाओं से अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है, अभिव्यक्ति का माध्यम अपेक्षाकृत स्थूल हो जाता है। इसीलिए कृती के व्यक्तित्व के साक्षात्कार के लिये कला के क्षेत्र में चित्र का एक महत्वपूर्ण स्थान है। चित्र की मौलिकता और वास्तविकता की परख बड़ी दुरूह है विशेषकर जब चित्र केवल यशः शरीर से जीवित हो और धीरे-धीरे भाव-जगत् की वस्तु बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में परख की कसौटी, व्यक्तित्व का सूक्ष्म-दर्शन कवि की कविता ही है पर उस कसौटी का प्रयोग चित्र और काव्य का संतुलन, कला और कला का समन्वय साधारण प्रतिभा का काम नहीं है। असाधारणत्व के साथ निःसंगेता उस प्रतिभा का गुण है। मुझे श्री ख़ैर बहोरवी में उस प्रतिभा की झलक मिली है। कुछ मानवीय दुर्बलताओं के साथ ख़ैर एक उच्च कोटि के मानव हैं। ख़ुद्दारी और आत्म-सम्मान की भावना इनमें कूट-कूट कर भरी है। मैं ख़ैर साहब को लगभग आठ वर्षों से जानता हूँ और इस लम्बे समय में अनेक बार साहित्यिक चर्चायें हुई हैं। उनकी निरपेक्षता, हृदय की उदारता, विचारों की स्वतंत्रता तथा आत्मा की निर्भयता सम्भवतः संस्कार जात है। हिन्दी के सन्त कवियों के अनुशीलन से उन्हें एक दृष्टि मिली है। फ़ारसी और उर्दू का उनका विषद अध्ययन है। विभिन्न सामाजिक और साहित्यिक संस्थाओं की सेवा करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन सब उपलब्धियों की पृष्ठ भूमि में उन्होंने ग़ालिब के व्यक्तित्व को पहचानने का प्रयास किया है। "ग़ालिब चित्रावली" उसी प्रयास का एक सुमधुर, सरस और सुस्वादु फल है। साहित्य प्रेमी मात्र के लिये यह एक प्रोत्साहन का साधन सिद्ध होगा, ऐसी मेरी धारणा है। मैं इस प्रयास के लिये श्री ख़ैर बहोरवी साहब को बधाई देता हूँ और भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे उन्हें चिरायु और स्वस्थ बनावें जिससे वे ग़ालिब की कविताओं का एक प्रामाणिक और सुपाठ्य संकलन हिन्दी में निकाल सकें।



गुज़ारिश

सलाम ! ऐ काशी की पवित्र भूमि सलाम ! तुझ पर हज़ार बार सलाम ! कि, तूने मुझे साहित्य-सेवा का अवसर प्रदान किया और उस नगरी में जो ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तों और बड़े-बड़े साहित्यकारों की नगरी है, मेरे मन में 'ग़ालिब अकादमी' स्थापित करने का विचार उत्पन्न किया। सन्त कबीर और उनके गुरू रामानन्द की पवित्र साधना भूमि ! तुझे बार-बार सलाम ! गङ्गा की शीतल लहरो ! मेरा सलाम लो ! मेरी लेखनी को ज्योति और मुझे शक्ति प्रदान करो कि मैं 'ग़ालिब इन्साईक्लोपीडिया' को पूरा करूँ और उसके मूल्याङ्कन का वास्तविक सम्बन्ध प्रस्तुत कर सकूँ।

काशी में 'ग़ालिब अकादमी' स्थापित करने का कारण यह है कि कलकत्ता जाते हुये ग़ालिब ने यहाँ क़याम किया था। वह ऐतिहासिक स्थान आज भी वर्तमान है। यहीं मिर्ज़ा ग़ालिब ने 'सुब्हे बनारस' लिखी थी जो उनके फ़ारसी संग्रह 'चिराग़े दैर' में सङ्कलित है जिसका अनुवाद मैं कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि 'सुब्हे बनारस' नाम से हिन्दी में एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करूँ जो काशी की प्रातःकालीन छटा पर लिखी हुई विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों की रचनाओं का संग्रह हो। मैंने इस पर काम भी शुरू कर दिया है।

काशी ! तेरा स्थान बहुत ऊँचा है। फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि 'अली हज़ीं' ने यहीं प्राण छोड़ने में गौरव का अनुभव किया था। जिसकी क़ब्र फ़ातमीन में मौजूद है। यहाँ के कण-कण के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसने प्रतिज्ञा की थी—

'अज़ बनारस न रवम माबदे आम अस्त ईंजा,
हर बरहमन पेसरे लछमनो राम अस्त ईंजा।

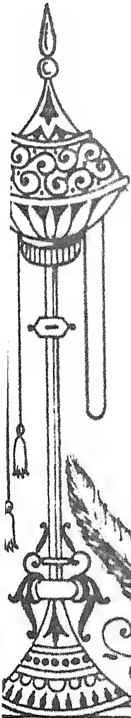
"मैं बनारस से नहीं जाऊँगा, यह स्थान सार्वजनिक उपासनालय है
और यहाँ हर ब्राह्मण, लक्ष्मण और राम के पुत्रों के समान है।

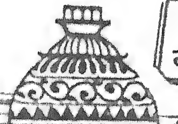
ग़ालिब अकादमी की स्थापना अक्तूबर १९५९ में हुई थी और 'ग़ालिब इन्साईक्लोपीडिया' का एक अध्याय 'मोरक़्क़ए ग़ालिब' इसी की ओर से उर्दू में प्रकाशित हुआ था। 'ग़ालिब चित्रावली' उसी का भाषान्तर है।

'इन्साईक्लोपीडिया' का शोध कार्य मैंने १९३९ में प्रारम्भ किया था जब "कुल हिन्द अञ्जुमने तरक़्क़ीए-उर्दू" में साहित्य के विख्यात आचार्य डा० मौलवी अब्दुलहक़ के साथ काम करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त था।

काव्य प्रतीक है, संस्कृति एवं सांस्कृतिक विचार धारा का। किसी भी राष्ट्र, जाति, एवं देश की मानसिक स्थितियाँ कवि मानस पर प्रतिबिम्बित होती हैं और युग-कवि उन प्रतिबिम्बों को सजा-सँवार कर, उनकी रूप रेखा उजागर करके उन्हें शब्दों की काया में प्रत्यस्थापित कर देता है।

अट्ठारहवीं सदी में ग़ालिब ने भारत में जन्म लिया था। जिसका काव्य हमारी संस्कृति का मर्म है। समय की चादर में लिपटे अनेक भाव-विचार जन मानस के अचेतनागार में प्रसुप्त थे जो ग़ालिब की तीव्र दृष्टि से छिपे न रह







सके। वह अचेतनागार ग़ालिब की प्रतिभा से प्रदीप्त हो उठा और फिर उन्हीं भावों और विचारों से उन्होंने शाश्वत काव्य की रचना की। युग कवि साधारण जीवन से अनुप्रेरित होकर भी असाधारण होता है। असाधारण न हो तो वह युग-द्रष्टा कैसे हो? इसीलिये 'वस्तु' की खोज का उसका दृष्टिकोण भी असाधारण होता है। यही कारण है वह आसानी से समझ में नहीं आता। ऐसी स्थिति में उसका हास-विलाश शोक-उच्छ्वास सभी कुछ विचित्र होता है।

ग़ालिब में भी यही वैचित्र्य है। इसीलिए उसका नैसर्गिक स्वर आसानी से समझ में नहीं आता। इसके फल-स्वरूप जनसाधारण उसका पूर्ण आनन्द नहीं ले पाते। इन्हीं तथ्यों के आधार पर यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि युग-कवि और जनसाधारण के बीच की खाई पाट दी जाये। उसका दृष्टि कोण, उसकी अन्तः दृष्टि, उसका विचार सामर्थ्य, उसका व्यक्तित्व और रस सबका एकाकार अपरिचित न रह जाये।

ग़ालिब के अब तक जितने चित्र एक दूसरे से भिन्न-भिन्न प्रकाशित हुए हैं वे सब इस चित्रावली में एकत्र हैं। इनमें कितने वास्तविक हैं और किस आधार पर, इसका संक्षिप्त विवरण भी दे दिया गया है।

चित्रावली में मिर्ज़ा ग़ालिब का एक नया चित्र भी संग्रहीत है जिसे प्रसिद्ध कलाकार अब्दुर्रहमान चुग़ताई ने लाहौर से भेजा है। यह मिर्ज़ा ग़ालिब का मूल चित्र नहीं अपितु काल्पनिक है जो कलाकार की कला का अन्यतम रूप है।

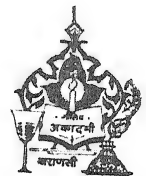
कहने को तो यह चित्रावली 'मोरक़्क़ए-ग़ालिब' का भाषान्तर है परन्तु वास्तव में उसमें और इसमें बड़ा अन्तर है। चित्रावली की विशेषता और महत्ता यह है कि इसमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू एवं डा० सम्पूर्णानन्दजी मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश के चित्रों के अतिरिक्त विद्यानुरागी माननीय बख़शी-ग़ुलाम मुहम्मद प्रधान मन्त्री जम्मू व कशमीर तथा डा० हुमायूँ कबीर के चित्रों से यह कृति गौरवान्वित है। इसी प्रकार डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और मित्रवर श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी अपने चित्रों और विचारों से चित्रावली की शोभा का सम्वर्द्धन किया है।

चित्रावली को आकर्षक बनाने के लिये ग़ालिब की चुनी हुई कवितायें भी उद्धृत की गई हैं।

...और यह बात भी कहने की है कि 'ग़ालिब इन्साईक्लोपीडिया' का समर्पण प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वीकार करके मुझे गौरवान्वित किया है और प्रस्तुत कृति का समर्पण उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने स्वीकार कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। स्पष्ट कर दूँ कि मैंने इसका समर्पण उनके पद के कारण नहीं बल्कि उनकी असाधारण पात्रता के कारण किया है। मैं उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग का आभारी हूँ जिसने 'चित्रावली' के प्रकाशन के लिये सहायता प्रदान करने की कृपा की। आवरण सज्जा के लिये चोग़ताई आर्ट स्कूल के आदि-प्रवर्तक अब्दुर्रहमान चोग़ताई का मैं आभार मानता हूँ जिन्होंने लाहौर से इस चित्रावली के लिये विशेष रूप से बनाकर भेजा है। चित्रावली सम्बन्धित कार्यों में उदीयमान और तरुण साहित्यकार ज़हीर, रामआधार तिवारी और मेरे भान्जे इशरत अली खाँ ने यदि सहयोग न दिया होता तो चित्रावली को इस रूप में प्रस्तुत न कर सकता। ईश्वर इन सबको सदा सुखी रक्खे।

बहोरवा, २५ अगस्त १९६०

ख़ैर बहोरवी



ग़ालिब चित्रावली

(ग़ालिब इन्साइक्लोपीडिया का एक अध्याय)



आइना देख, अपना सा मुँह लेके रह गए
साहब को, दिल न देने प कितना गुरूर था

★

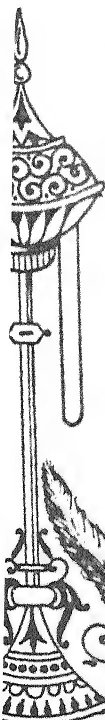
रात दिन, गर्दिश में हैं सात आसमाँ
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबरायें क्या ?

★

लाग हो, तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी, तो धोका खायें क्या







यह चित्र

सर्व प्रथम सन् १८६३ ई० में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा "कुल्लियाते ग़ालिब" के दूसरे संस्करण में लीथो द्वारा छपा ।

इस चित्र के प्रकाशित होने की घोषणा ३, जून सन् १८६३ ई० के सुविख्यात "अवध अख़बार" लखनऊ में हुई थी ।

यह चित्र मिर्ज़ा साहब के जीवन काल में प्रकाशित हो गया था । इसे मिर्ज़ा साहब ने देखा था ।

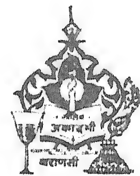
मेहबाँ हो के बुलालो मुझे, चाहो जिस वक़्त
मैं गया वक़्त नहीं हूँ, कि फिर आ भी न सकूँ



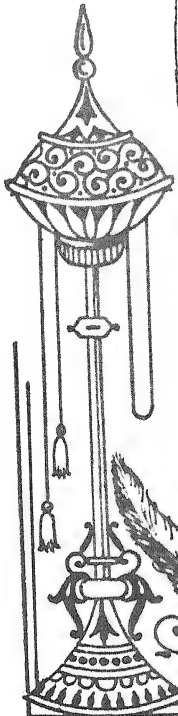
कहते हैं, जीते हैं उम्मीद प लोग
हम को जीने की भी उम्मीद नहीं



वह आये घर में हमारे, ख़ोदा की क़ुदरत है !
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं







यह चित्र

सर्व प्रथम ३ अगस्त सन् १९०२ ई० के "पैसा" अख़बार लाहौर में छपा था। जिसको "ख़ादिमुत्तालीम" प्रेस ने लीथो द्वारा छापा था।

उर्दू के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान स्व० पण्डित ब्रज मोहन दत्तात्रेय "कैफ़ी" ने मुझे इसके बारे में बताया था कि एक क़लमी तस्वीर लाला श्री राम ने दिल्ली के चित्रकारों के एक परिवार से ख़रीदी थी। यह उसी की प्रतिलिपि है।

लाला श्री राम जी को कला-कृतियों के संग्रह का बड़ा शौक़ था। उनका बहुमूल्य संग्रह हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी के संग्रहालय में सुरक्षित है।



आह का किसने असर देखा है !

हम भी एक अपनी हवा बाँधते हैं



नींद उसकी है, देमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं

तेरी ज़ुल्फ़ें, जिसके बाज़ू पर, परीशां हो गईं

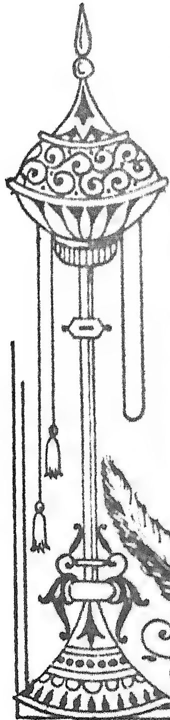


इस सादगी प कौन न मर जाए ऐ ख़ोदा !

लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं







यह चित्र

सन् १८९७ ई० में "यादगारे ग़ालिब" के प्रथम संस्करण में सर्वप्रथम लीथो द्वारा छपा था, जिसको कानपुर के "नामी प्रेस" ने प्रकाशित किया था।

"यादगारे ग़ालिब" मिर्ज़ा साहब के शिष्य मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' की रचना है। इसमें मिर्ज़ा साहब के जीवन चरित्र के प्रकाश में उनकी रचनाओं का मर्म समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इस चित्र के विषय में स्वर्गीय मौलाना 'आज़ाद' ने लिखा है कि "मौलाना 'हाली' ने मुंशी रहमतुल्लाह 'राद' के पास जो "नामी प्रेस" के मालिक थे, 'मिर्ज़ा ग़ालिब' की दो तस्वीरें इसलिये भेजी कि इनमें से जो अधिक अच्छी हो उसकी प्रतिलिपि 'यादगार' के लिये करा ली जाय। मुन्शी रहमतुल्लाह 'राद' ने उस चित्र को सामने रखकर, जो ग़ालिब का अन्तिम चित्र माना जाता है, कल्पना की, कि इससे कुछ वर्ष पूर्व मिर्ज़ा का नाक-नक़्शा कैसा रहा होगा। इस प्रयत्न में एक बिल्कुल नया चौखटा तैयार हो गया।"



कब वह सुनता है कहानी मेरी !
और फिर वह भी ज़बानी मेरी

★

चाहिये अच्छों को जितना चाहिये
ये अगर चाहें, तो फिर क्या चाहिये

★

ग़ैर फिरता है, लिये यूँ तेरे ख़त को, कि अगर
कोई पूछे, कि 'ये क्या है'? तो छुपाये न बने







यह तूलिका रंजित चित्र

लाल क़िला दिल्ली के म्युज़ियम में अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र' के अन्य सामानों के साथ सुरक्षित है।

इसको स्वयं ग़ालिब ने दिल्ली के किसी कुशल कलाकार से बनवा कर शाह ज़फ़र को भेंट किया था।

इसका फ़ोटो सर्वप्रथम अप्रैल सन् १९२९ में बाबाए उर्दू डा० मौलवी अब्दुल हक़ "भूतपूर्व सेक्रेट्री" अंजुमने तरक़्क़ीए उर्दू (हिन्द) ने अंजुमन की त्रैमासिक पत्रिका "उर्दू" के अप्रैल १९२२ के अंक में हैदराबाद से प्रकाशित किया था।

इस चित्र के बारे में डा० मौलवी अब्दुल हक़ साहब ने जो उर्दू साहित्य के विशेषज्ञ और मर्मज्ञ हैं, लिखा है कि—"अब तक मिर्ज़ा ग़ालिब के जितने चित्र प्रकाशित हो चुके हैं उनमें यह सबसे अधिक विश्वसनीय है।"

मूल चित्र ७½" लम्बा और ५¾" चौड़ा है। इसके नीचे "शबीहे हज़रते ग़ालिब देहलवी" लिखा हुआ है।

यह चित्र अपने असली रङ्गों के साथ सर्वप्रथम "ग़ालिब चित्रावली" में प्रकाशित किया जा रहा है।

न लुटता दिन को, तो कब रात को यूँ बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का, दोआ देता हूँ रहज़न को

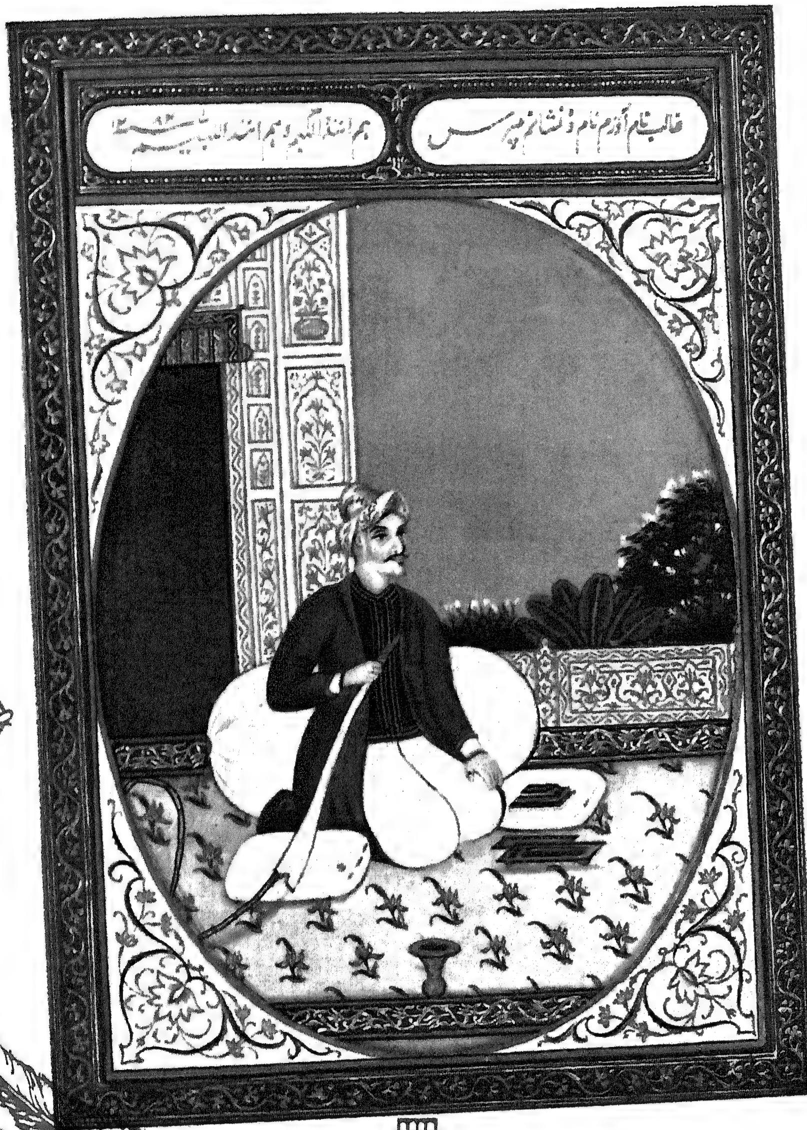
★

तुम जानो, तुमको ग़ैर से जो रस्मो राह हो
मुझको भी पूछते रहो, तो क्या गुनाह हो

★

ये कह सकते हो ? 'हम दिल में नहीं हैं पर ये बतलाओ
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो, तो आँखों से नेहाँ क्यों हो ?





यह तूलिका रञ्जित चित्र

स्वर्गीय नव्वाब सद्रयार जंग मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरबानी ने ३० ज़ीक़ाद सन् १३१५ हिजरी (सन् १८९६ ई०) में, दिल्ली से ख़रीदा था। तब से यह उनके विख्यात पुस्तकालय हबीबगंज, ज़िला अलीगढ़ में सुरक्षित है।

सुप्रसिद्ध "ग़ालिब-विशेषज्ञ" श्री मालिक राम ने पहले अपनी किताब "सबेद चीन" और "ज़िक्रे ग़ालिब" में, सन् १९३८ में इसका फ़ोटो-प्रतिलिपि प्रकाशित किया था और १९५२ में साढ़े चार आने वाले डाक टिकटों पर भी इसी की प्रतिलिपि भारत सरकार ने प्रकाशित की थी।

यह चित्र मुग़ल चित्र-कला का एक चमत्कार है। आज से लगभग ९५ वर्ष पूर्व सन् १२८२ हिजरी में इसे किसी कुशल कलाकार ने बनाया था।

यह चित्र १०" लम्बा, ७" चौड़ा है। इसके पीछे निम्नलिखित वाक्य अङ्कित हैं :—

"तस्वीरे दिलपज़ीरे असदुल्लाह ख़ाँ मौसूम ब मिर्ज़ा नौशाह, मारुफ़ ब 'ग़ालिब', देहलवी।" इस वाक्य के नीचे दाहिनी ओर कुछ और लिखा हुआ था जो खुरच दिया गया है।

यह चित्र अपने वास्तविक रङ्गों के साथ सर्वप्रथम इस चित्रावली में प्रकाशित हो रहा है।

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री, ग़ालिब !
हम भी क्या याद करेंगे, कि ख़ोदा रखते थे

*

कोई दिन, गर ज़िन्दगानी और है
अपने जी में हमने ठानी और है

*

आगे आती थी हाले दिल प हँसी
अब किसी बात पर नहीं आती



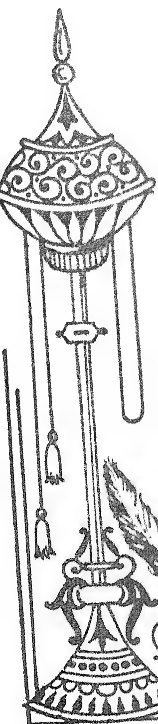


यह चित्र

सन् १९२१ ई० में "दीवाने ग़ालिब जदीद" में छपा था जो "नुस्ख़ए हमीदिया" के नाम से विख्यात है। "नुस्ख़ए हमीदिया" का प्रकाशन भोपाल से सन् १९२१ में हुआ था।

यह उस चित्र की अनुकृति है जो सन् १८६३ ई० में मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के "कुल्लियाते फ़ारसी" के दूसरे संस्करण में छपा था।

मूल चित्र से अनुकृति में थोड़ा सा अन्तर हो गया है। फिर भी चेहरे की रूप-रेखा में कोई अन्तर नहीं है।





हम वहाँ हैं, जहाँ से हम को भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती

★

मैंने माना कि कुछ नहीं ग़ालिब
मुफ़्त हाथ आए, तो बुरा क्या है ?

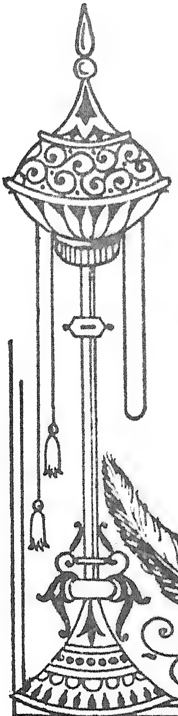
★

उनके देखे से, जो आ जाती है मुँह पर रौनक़
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है



यह रंगीन चित्र





डा० ज़ाकिर हुसैन ख़ाँ साहब द्वारा १९२५ में प्रकाशित कराये हुये ग़ालिब के उर्दू दीवान में सर्व-प्रथम छपा था। डा० साहब ने "मतबए शिर्कते कावियानी", बर्लिन में छपवाया था। चित्र के बारे में डा० साहब से मैंने पूछताछ की थी। उत्तर देते हुए वह अपने कृपा-पत्र दिनाङ्क १६ मार्च सन् १९५८ में लिखते हैं :—

"शिर्कते काबियानी के मतबे में दीवाने ग़ालिब का जो एडीशन मैंने छपवाया था उसके लिये ग़ालिब की तस्वीर 'लैपज़िक' के एक मुसव्विर से मुजीब साहब की मार्फ़त बनवाई थी। मैंने उन्हें 'ग़ालिब' की वह तस्वीर जो 'हाली' की "यादगारे ग़ालिब" में छपी थी और वह तस्वीर जो सर रास मसऊद साहब मरहूम वाले एडीशन में निकली थी, भेज दी थी। जहाँ तक याद पड़ता है "यादगारे ग़ालिब" में से एक इक़्तबास का तर्जुमा भेज दिया था जिसमें 'ग़ालिब' के हुलिये और रङ्ग-रूप का ज़िक्र है।"

इस तरह यह सर्वथा काल्पनिक चित्र है। इसका 'ग़ालिब' के वास्तविक रूप से कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि यह वास्तव में 'ग़ालिब' की जर्मन कल्पना है। फिर भी इसके सम्बन्ध में एक आश्चर्यजनक बात यह है कि अब इसी निराधार चित्र की सादी, रङ्गीन अनुकृतियाँ प्रचलित हो गई हैं।



हर एक बात प कहते हो तुम, 'कि तू क्या है ?'
तुम्हीं कहो कि ये अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है ?

★

रगों में दौड़ने फिरने के, हम नहीं क़ायल
जब आँख से ही न टपका, तो फिर लहू क्या है ?

★

मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था
दिल भी, यारब ! कई दिये होते



यह चित्र

मिर्ज़ा ग़ालिब की अन्तिम छायानुकृति है। पहली बार मासिक "मेआर" लखनऊ के जनवरी-फ़रवरी सन् १९१० ई० के संयुक्ताङ्क में छपा। "मेआर" के उपयुक्त अङ्क के सम्पादक हकीम सैयद अली मुहसिन खाँ 'अब्र' ने लिखा है।



"यह तस्वीर मुझे शफ़ीक़े मुकर्रम (आदरणीय) नव्वाब सैयद बहादुर हुसैन खाँ साहब "अन्जुम" निशापुरी से मिली और उन्हें ख़्वाजा क़मरुद्दीन खाँ साहब 'राक़िम' ने जयपुर से भिजवाई थी जो मिर्ज़ा ग़ालिब के अज़ीज़े क़रीब होते थे। उनकी तहरीर से मालूम हुआ कि मिर्ज़ा के आख़ीर वक़्त में उनके चन्द शागिदों ने यह तस्वीर इस तरह खिंचवाई थी कि उनको बड़ी मुश्किलों से उठाकर कुर्सी पर बैठा दिया था।"

यह चित्र 'शुएब' क़ोरैशी साहब को भेजते हुए नव्वाब सर अमीरुद्दीन अहमद ख़ाँ फ़र्रुख़ मिर्ज़ा ने अपने पत्र दिनाङ्क १२ अक्तूबर सन् १९१८ में लिखा है :—

"इस ख़त के साथ आपको मिर्ज़ा ग़ालिब के अहदेपीरी का आख़री फ़ोटो भेज रहा हूँ। उनका इस्मेग्रामी और वह तारीख़ जब यह फ़ोटो खींचा गया था उसकी पुश्त पर मेरे वालिद के क़लम से तहरीर है। मुझे यक़ीन है कि इस फ़ोटो के लिये जाने के छ माह बाद मिर्ज़ा साहब का इन्तक़ाल हुआ। मुझे याद है कि मेरे वालिद ने इस मक़सद के लिये उनको कुर्सी पर बैठने के लिये मजबूर किया था, हालाँकि नेक़ाहत के बाइस वह इस क़ाबिल न थे।"

दूसरा पत्र जो फ़र्रुख़ मिर्ज़ा साहब ने ३ नवम्बर सन् १९१८ को क़ोरैशी साहब के नाम लिखा है उसमें भी वह इस तस्वीर के बारे में लिखते हैं :—

"वह फ़ोटो जो मैंने आप को भेजा है, आख़िरी वक़्त की तस्वीर है

और मरने से कुछ महीने पहले की हालत है जो पीराना साली और बेकारीए आज़ा का ज़माना था और मेरे रूबरू फ़ोटो लिया गया था। मिर्ज़ा साहब को वालिद साहब ने इसके लिये मजबूर किया था।"

मिर्ज़ा ग़ालिब के इसी चित्र के बारे में 'अकमलुल अख़बार' देहली, मई सन् १८६७ ई० के अङ्क में एक घोषणा छपी थी। उस घोषणा के बाद ग़ालिब के अन्तिम चित्र की प्रतिलिपियाँ विभिन्न लोगों ने मंगवाई। उन्हीं में से एक 'राक़िम' साहब के पास से होती हुई 'अब्र' साहब के पास पहुँची जिसे उन्होंने अपनी मासिक पत्रिका 'मेआर' लखनऊ में प्रकाशित कर दी। दूसरी फ़र्रूख़ मिर्ज़ा साहब के पास थी जिसे उन्होंने क़ोरैशी साहब के पास भेजी और फिर 'दिवाने ग़ालिब' के "निज़ामी एडीसन" में सर रास मसउद द्वारा 'निज़ामी प्रेस' बदायूँ में छपी।

'अब्र' साहब ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में ग़ालिब के जिन शार्गिदों की ओर इङ्गित किया है उनमें निश्चय ही फ़र्रूख़ मिर्ज़ा साहब के पिता नव्वाब मिर्ज़ा अलाउद्दीन साहब 'अलाई' एक अच्छा स्थान रखते हैं।

मिर्ज़ा ग़ालिब के अन्तिम चित्र के बारे में स्व० मिर्ज़ा फ़रहतुल्लाह बेग देहलवी ने त्रैमासिक "उर्दू" के अक्तूबर सन् १९२७ ई० के अङ्क में लिखा है:—

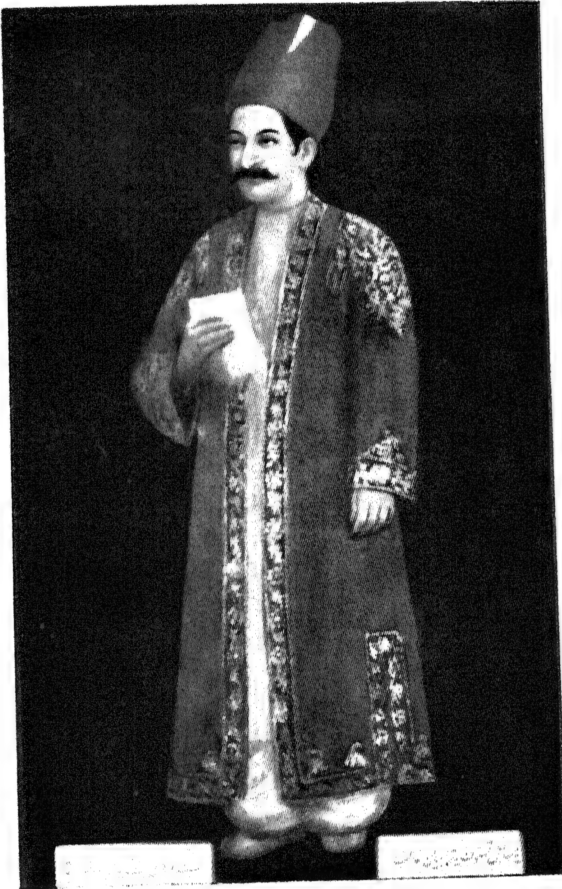
> "मेरे अम्मे बुज़र्गवार मिर्ज़ा अब्दुस्समद बेग मरहूम ने 'ग़ालिब' की तस्वीर उनके इन्तक़ाल से चन्द ही रोज़ पहले रहमत अली फ़ोटो ग्राफ़र से खिंचवाई थी।"

मिर्ज़ा फ़रहमतुल्लाह बेग की यह बात न विश्वसनीय है, न मान्य। उनकी अपेक्षा फ़र्रूख़ मिर्ज़ा का सम्बन्ध ग़ालिब से अधिक घनिष्ट था। उनके और उनके पिता के नाम ग़ालिब के पत्रों के संग्रह उर्दू-ए-मोअल्ला" में कई पत्र मिलते हैं और दीवाने ग़ालिब में यह शेर भी प्रकाशित है।

> **मुझसे 'ग़ालिब' ये 'अलाई' ने ग़ज़ल लिखवाई,**
> **एक बेदाद गरे रञ्ज फ़ेज़ा और सही।**

अतः फ़र्रूख़ मिर्ज़ा ही अधिक विश्वसनीय हैं।





यह चित्र

उर्दू के विख्यात लेखक, समालोचक और विचारक 'मौलाना नियाज़' फ़तहपुरी ने अपने पत्र 'निगार' के सन् १९३२ ई० के ग़ालिब की "शोख़ियाँ" नम्बर में प्रकाशित किया था।

यह चित्र भी निराधार है इसके बारे में मौलाना 'नियाज़' फ़तहपुरी साहब से मैंने पूछा था जिसके उत्तर में मौलाना साहब ने अपने पत्र दिनाङ्क ६ फ़रवरी सन् १९५८ द्वारा समर्थन किया है।

"निगार के "ग़ालिब नम्बर" में मिर्ज़ा नौशा की जो तस्वीर छाया हुई है वह कोई तारीख़ी या फ़न्नी हैसियत नहीं रखती।

मैंने यहीं लखनऊ के एक मशहूर आर्टिस्ट मु० हकीम साहब से बनवाई थी और उसी का ब्लाक तैयार करके निगार में छाया करा दिया था।"

बोझ वह सर से गिरा है, कि उठाये न उठे
काम वह आन पड़ा है, कि बनाये न बने

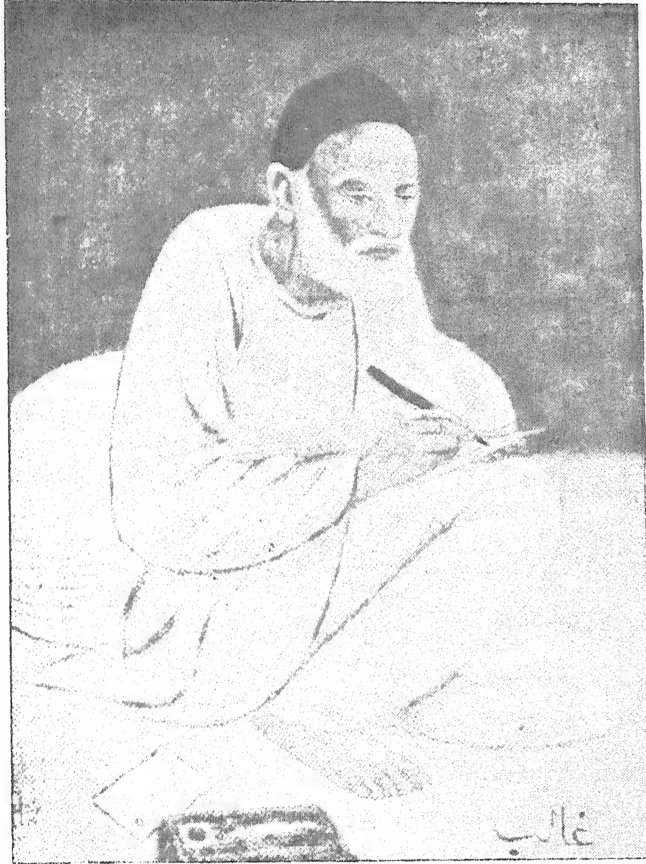
★

मत पूछ, कि क्या हाल है मेरा, तेरे पीछे
तू देख, कि क्या रंग है तेरा, मेरे आगे

★

गो हाथ को जुम्बिश नहीं, आँखों में तो दम है
रहने दो अभी साग़रो मीना मेरे आगे





यह चित्र

सर्व प्रथम राम बाबू सक्सेना ने अपनी किताब "तारीख़े अदबे उर्दू" में छापा है जो नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुई है। इस चित्र को लखनऊ के आर्टिस्ट मु० हकीम ने बनाया था जिसका ग़ालिब के वास्तविक रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह चित्र काल्पनिक है।



बात पर वाँ ज़बान कटती है
वह कहें और सुना करे कोई

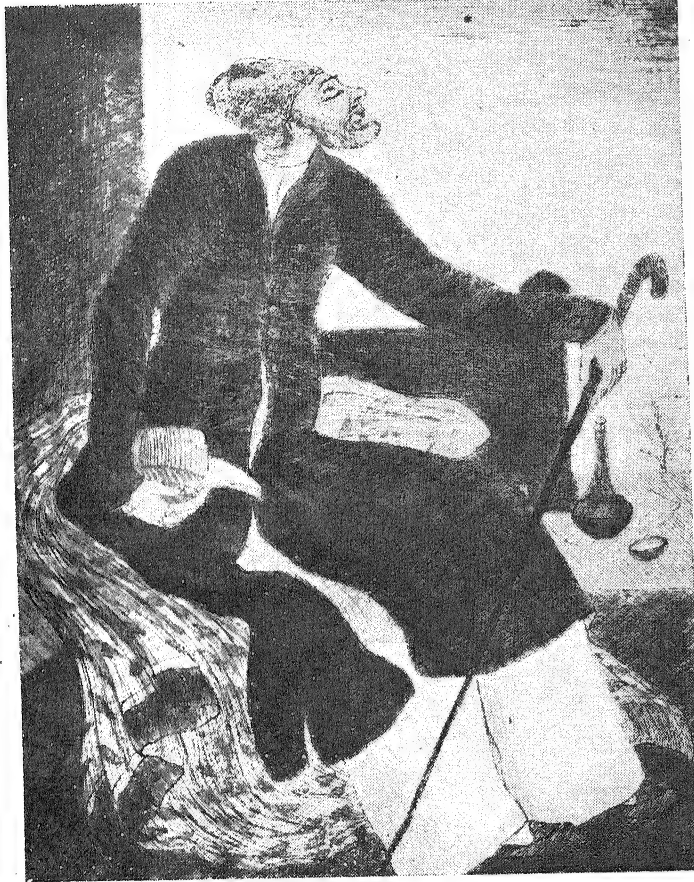
★

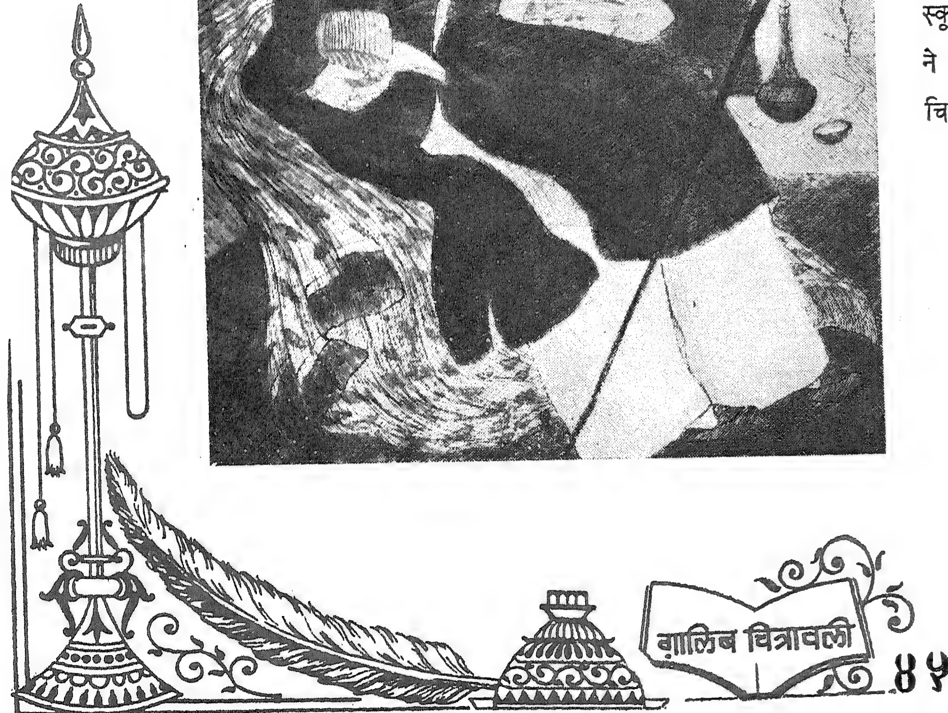
न सुनो, गर बुरा कहे कोई
न कहो, गर बुरा करे कोई

★

रोक लो गर ग़लत चले कोई
बख़्श दो, गर ख़ता करे कोई







यह चित्र

चुग़ताई आर्ट का नमूना है। जिसको चुग़ताई स्कूल के विख्यात प्रवर्तक श्री अब्दुर्रहमान चुग़ताई ने चित्रावली के लिए भेजा है। यह विशुद्ध काल्पनिक चित्र है।

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश प दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले

★

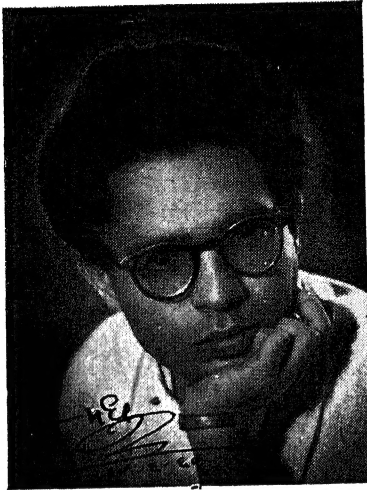
मगर लिखवाये कोई उसको ख़त, तो हमसे लिखवाये
हुई सुब्ह और घर से कान पर रख कर क़लम निकले

★

गर्मी सही कलाम में, लेकिन न इस क़दर
की जिससे बात, उसने शिकायत ज़रूर की



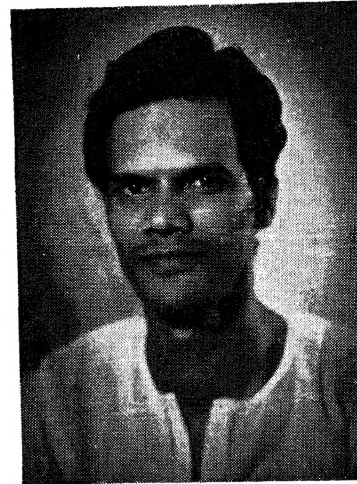
कलाकार



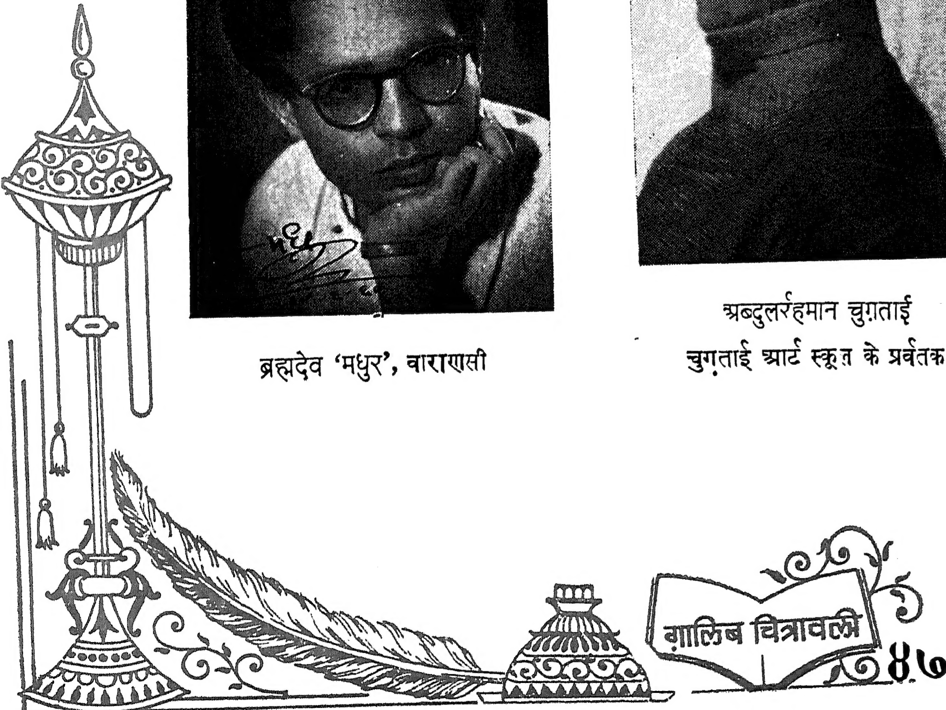
ब्रह्मदेव 'मधुर', वाराणसी



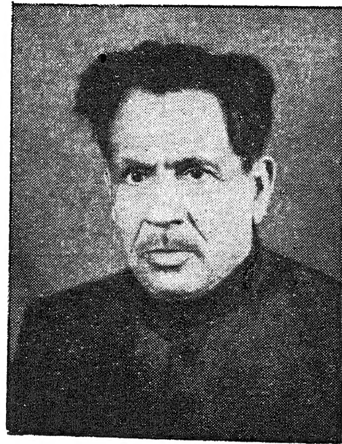
अब्दुलर्रहमान चुग़ताई
चुग़ताई आर्ट स्कूल के प्रवर्तक



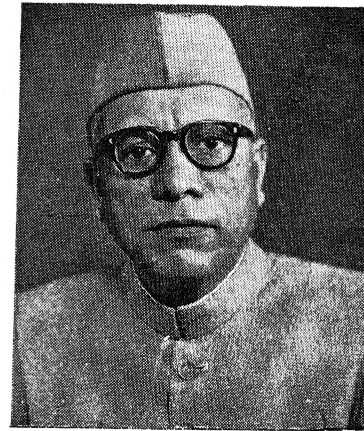
एम० भारती, वाराणसी



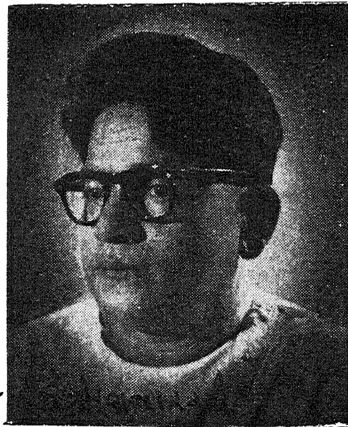
साहित्य प्रेमी जो मेरा उत्साह बढ़ाते रहते हैं !



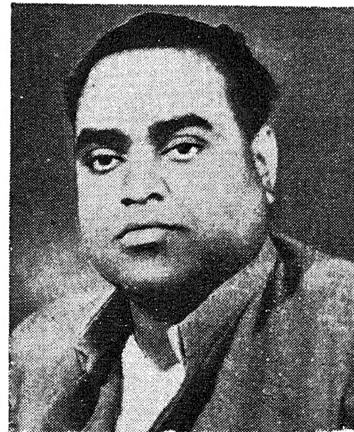
फ़िराक़ गोरखपुरी



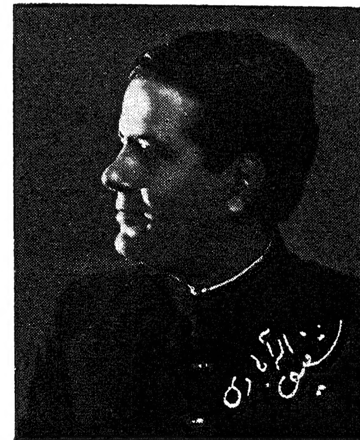
अबुल हसनात लारी



नज़ीर, बनारसी



मक़बूल अहमद लारी

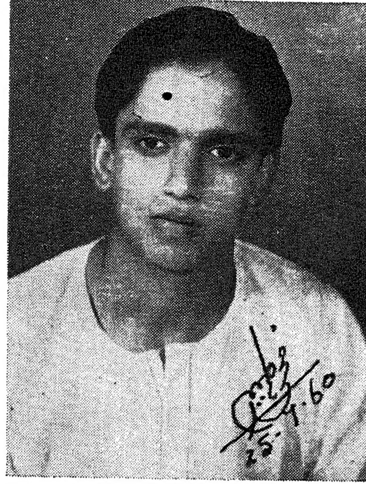


शफ़ीक़, इलाहाबादी





इशरत अली ख़ाँ
मैनेजर—ग़ालिब अकादमी



मुहम्मद ज़हीर
सेक्रेटरी—ग़ालिब अकादमी

प्रकाशक

ग़ालिब अकादमी

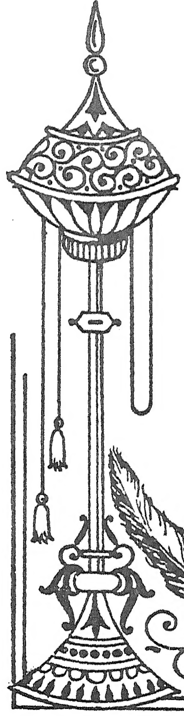
मदनपुरा, वाराणसी

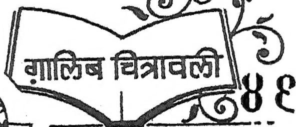
मुद्रक

शारदा प्रसाद जायसवाल

देश सेवा प्रेस, इलाहाबाद

सितम्बर सन् १९६०   प्रथम संस्करण १०००   मूल्य दस रुपये





चित्रावली

शारदा प्रसाद जायसवाल



देश सेवा प्रेस, इलाहाबाद

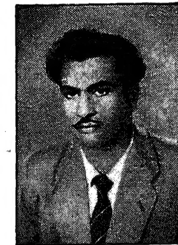
ब्लाक छपाई ज़ेरे निगरानी-क़ासिम दादा

जनार्दन प्रसाद



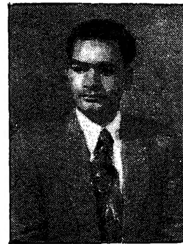
रूहेरवाँ–देश सेवा प्रेस, इलाहाबाद

श्रीराम भार्गव



कैपिटल ब्लाक वर्क्स, इलाहाबाद

नरेन्द्र सिंह सक्सेना



स्टेशनरी सेन्टर बुक बाइन्डर्स, इलाहाबाद

